अन्तरा-शब्दशक्ति

आधी धूप आधी छाँव

काव्य संग्रह

हेमन्त बोर्डिया

आधी धूप-आधी छाँव

(काव्य संग्रह)

हेमन्त बोर्डिया

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन
वारासिवनी, मध्यप्रदेश

ISBN- "978-93-5372-023-0"

अन्तरा-शब्दशक्ति प्रकाशन
मुख्य कार्यालय - १५ नेहरु चौक वारासिवनी, जिला बालाघाट (म.प्र) ४८१३३१
दूरभाष- (कार्या.) ०७६३३-२५३१५९ (मो) ९४२४७६५२५९
अणुडाक- antrashabdshakti@gmail.com
अंतरताना- www.antrashabdshakti.com
प्रथम संस्करण २०१९- हेमन्त बोर्डिया
मूल्य - ६०.०० रुपये
आवरण चित्र- संदीप सोनी,वारासिवनी
मुद्रक- शैलू कम्प्यूटर्स, वारासिवनी
AADHI DHOOP-AADHI CHHAVN BY HEMANT BORDIYA
वैधानिक चेतावनी - इस पुस्तक का सर्वाधिकार सुरक्षित है। लेखक की लिखित अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फोटोकापी एवं रिकार्डिंग सहित इलेक्ट्रोनिक अथवा मशीनी किसी भी माध्यम से अथवा संग्रहण और पुनर्प्रयोग की प्रणाली द्वारा किसी भी रूप में पुनरुत्पादित अथवा संचारित प्रसारित नहीं किया जा सकता है। प्रस्तुत पुस्तक की समस्त रचनाएँ लेखक द्वारा अन्तरा शब्द शक्ति प्रकाशन को प्रेषित की गई है अतः प्रत्येक रचना की मौलिकता के किसी भी दावे हेतु लेखक जिम्मेदार है। प्रस्तुत पुस्तक के घटनाक्रम पात्र, भाषाशैली एवं स्थान सभी लेखक की कल्पना है। किसी भी प्रकार के वाद-विवाद के लिए प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रमणिका

आत्मकथ्य 5

1. आधी धूप-आधी छाँव 7
2. भाग्य और भगवान 8
3. ये अल्फ़ाज़ 9
4. स्याह रंग 10
5. वही पल 11
6. सूखी डाली 12
7. ये रंग 13
8. उड़ना चाहते हैं 14
9. अपनी यादें 15
10. आधी ज़िन्दगी 16
11. चराग़ 17
12. मेरी परछाई 18
13. ये यादें 19
14. मैं सैनिक सरहद का 20
15. मेरे एहसासों 21
16. जिंदगी वतन के नाम 22
17. बेटियाँ 23
18. नाप लूँ मैं आसमाँ 24
19. खुशियों के गूढ़ ज्ञानी 25
20. गर्म लिहाफ़ 26
21. खुशी का अनुमान 27
22. स्पर्श से माथे पर 28
23. आता है कभी वक़्त 29
24. सुकून की दौलत 30
25. मुट्ठी भर सुकून 31
26. न मैं चाँद हूँ, न तुम सितारा 32

आत्मकथ्य

सम्माननीय पाठकों ,

कलम के माध्यम से सृजन का पहला एवं मुख्य स्रोत विचार हैं और अच्छे विचारों के लिए सभ्य वातावरण का मिलना आवश्यक है। मेरे जीवन में भी यह सृजन की यह महती आवश्यकता मेरे माता-पिता ने पूरी की। शिक्षा के लिए संघर्ष के गाँव से शहर आकर पिताजी ने अपनी आने वाली संतानों को एक अच्छा परिवेश देने का सपना देखा और पूरा भी किया। शिक्षा के दौरान विद्यालयीन कार्यक्रमों में निबंध लेखन से स्वयं में लेखन गुणों का अंकुरण महसूस किया।

महाविद्यालयीन शिक्षा पूर्ण होने तक निबन्धों के अलावा मात्र 4-5 कविताऐं और 2 एकांकी लिख चुका था। बाहर निकल कर रोजगारोन्मुखी रास्तों पर रोजगार की तलाश में दौड़ लगाई और उस दौड़ से उड़ती धूल में लेखनशक्ति के अंकुर वही कहीं दब गए और वर्षों दबे रहे। संचार तकनीकी में विकास के चलते वाट्सप समूहों के माध्यम से अच्छी रचनाओं के पाठन, संकलन और कॉपी पेस्ट के साथ दबे हुए अंकुरों को नमी मिली और प्रस्फुटन के बाद स्वयं के सृजन का पौधा लहलहाने लगा। वरिष्ठ रचनाकारों के स्नेह मार्गदर्शन और प्रोत्साहन के चलते यह पौधा आज आपके सामने हैं। विभिन्न पटलों के माध्यम से सृजन शक्ति

को उर्वरता मिली और अब अंतरा शब्दशक्ति प्रकाशन से मुक्त कविता संग्रह के साथ प्रकाशन का एक और पुष्प खिलने जा रहा है। आप सभी अपने स्नेहाशिष एवं मार्गदर्शन से इस पौधे को इतना लायक वृक्ष बना दें, कि यह स्वयं की छाया में नए साहित्य सृजक पौधों को आश्रय दे सके।

हेमन्त बोर्डिया

आधी धूप-आधी छाँव

आधी धूप, आधी छांव सी,
थोड़ी शहर, थोड़ी गाँव सी,
कभी कूक कोयल की लगे,
कभी कौवे की ये काँव सी।

कहीं मखमली से ले रास्ते,
कहीं मोड़-मोड़ पे हादसे,
कहीं दूध की बहती नदी
कभी खून की प्यासी सदी।

कहीं करवटों में हैं रात सी,
कभी जीत सी, कभी मात सी,
कहीं बेसबब उड़ती रहीं,
टूटे ये शाख के पात सी।

घुटनों के बल कभी ये चली,
कभी भागी पाँव-पाँव सी,
ये ज़िन्दगी भी अज़ीब है,
किसी काफ़िले के ठाँव सी।

कभी धूप सी, कभी छाँव सी,
थोड़ी शहर, थोड़ी गाँव सी।।

भाग्य और भगवान

विज्ञान जानता है
कौन, कितना, कैसे?
उठा सकता है बोझ।

विज्ञान बता देता है,
सहजता से कोई व्यक्ति या वस्तु
सह सकती है, ढो सकती है,
अपने भार से कितना गुना वज़न।

लेकिन विडंबना है वो नहीं समझता,
कौन, कितना, कब? कैसे उठा सकता है,
कितना बोझ निष्ठुर है, तर्क से परे है, भाग्य।

वो न देखता है उम्र न परिस्थिति,
न समय वो डाल देता है,
कभी भी किसी पर भी बमुश्किल या
कभी न ढोया जा सकने वाला बोझ।

तभी तो विज्ञान नहीं हो पाता
कभी बड़ा भाग्य से, भगवान से।।

ये अल्फाज़

न होता है इनका कोई अपना रंग,
न ख़ुशबू कोई, न सांस लेते है,
न धड़कती है, इनमें धड़कन इनकी
ये न पिघलते हैं।।

न फिसलते, न रोते, न सिसकते हैं,
इनमें न अंधेरा, न रोशनी कोई,
न मोहब्बत की कोई कशिश, न हीं
नफ़रत का असर और न तन्हा कोई।

वज़ूद इनका जब अकेले होते हैं,
ये अल्फ़ाज़, रह जाते हैं महज़
अल्फ़ाज़ और जब मिलाता है,
इन्हें आपस में कोई सुखनवर।

बनाकर इनकी टोली ये ले लेते हैं,
रंग, ख़ुश्बू, बयां हो जाती है इनसे
मुहब्बत, नफ़रत तो कभी रहनुमाई की ज़ीनत।।

ये अल्फाज़ ज़मूरे हीं तो होते हैं,
किसी सुख़नवर मदारी के।।

स्याह रंग

मैं बना सकता हूँ, अपनी मर्ज़ी के चित्र,
अपनी पसंद के रंगों से और पसन्द न आये तो
कुछ देर में बदल भी देता हूँ बिखेर कर।

वापस स्याह रंग वैसे भी ख़याली दुनिया में,
बहुत आसान होता है, बदल देना चीजों को,
हालातों को अपने आप को भी, यहाँ मैं कह देता हूँ,
हर बात अपने ग़ुरूर को तोड़कर।

कोई हद भी नहीं रोकती मुझे न रहता है,
डर किसी ख़राब नतीज़े का, बहरहाल बुरा है,
भी क्या आधी ज़िन्दगी तो यूँ भी हम इसी
कैनवास पर ब्रश चलाते खर्च करते हीं हैं।

बगैर किसी को बताये सबसे छुपाये,
दिन के रंग बिरंगे चित्रों से ज्यादा उन चित्रों
से जो कई बार लगता है, कि थोपे गए हैं।

हालातों, समझौतों, किस्मतों के नाम पर,
मुझे पसंद है, दिन के रंग बिरंगे इन परदों से
ज़्यादा रात का स्याह कैनवास।।

क्यूँकि
मैं बना सकता हूँ, इस पर अपनी मर्ज़ी के चित्र,
अपनी पसंद के रंगों से और पसन्द न आये तो
कुछ देर में बदल भी देता हूँ, बिखेर कर।।
वापस स्याह रंग ओढ़ कर नींद की काली चादर।।

वही पल

वो झुकी-झुकी सी निगाह में,
तेरी अनकहीं उस आह में वो शोख रंग था।
गाल पर या थी, पुरकशिश तू हीं,
चाह में ख़ामोशियों के जो पल मिले,
लगे यूँ कि जैसे हो कल मिले।

तुझे देखते बस मैं रहा,
और आज तक है सिला यहीं
तुझे सोचते बस मैं रहा वही पल
चलो न सजाएं फिर उसी छत पे वापस।।

चल मिले वही जुम्बिशें, वही चाहतें,
लिये एक दूजे में ढल मिले, मेरी आरज़ू
वही वक़्त ले मुझे फिर से अपनी पनाह में।।

वही पल कि जब पहली दफ़ा मिले तुमसे थे,
हम राह में जो कहीं न थी, जो लिखी न थी,
इक नज़्म सी थी निगाह में, इक बज़्म रौशन हो गयी।।

तेरी वाह में, मेरी वाह में, वही पल चलो न
सजाएं फिर, उसी छत पे वापस चल मिले,
वही जुम्बिशें, वही चाहतें लिये एक दूजे में ढल मिले।।

सूखी डाली

सूखी डाली पर संघर्षरत
एक अदद हरा पत्ता उम्मीद बंधाता है,
देता है सन्देश जीवन अभी मरा नहीं है।।

सूखी डाली पर लटका हुआ एक अदद हरा पत्ता,
करता है संघर्ष, करता है पूरा प्रयत्न, कि वो
रहे न रहे, उसका ये पौधा, ये पेड़ होता रहे
पोषित और एक दिन वापस लहलहा उठे।।

पत्ते जानते है, उनका कर्तव्य है, पोषण करना,
बनाना भोजन अपने पूरे परिवार के लिये और
जब नहीं मिल पाता उन्हें अपना राशन, बनाने के
लिये ख़ुराक, वो झोंक देते हैं अपना सर्वस्व।।

अपनी शिराओं में बहने वाले, तत्व से करने लगते हैं,
परिवार के पेट की पूर्ति और एक दिन सूख कर टूट जाते हैं।।

पत्ते झरते नहीं है, पत्ते देते हैं बलिदान,
पत्ते होते हैं, हूबहू माँ की तरह और जड़
संघर्षरत पिता की तरह।।

ये रंग

परम पिता ने बिखेरे अलग अलग रंग,
अपने बच्चों को लुभाने उनका मन मोहने
के लिए फैला दिया, उनकी आँखों के सामने
रँग बिरंगा संसार बच्चों ने बाँट लिए।।

खेल-खेल में अपने-अपने रंग,
बना लिए अपने-अपने रंगों के प्रतीक
ध्वज और फैल गए सृष्टि में।।

भौगोलिक स्थितियों के आधार पर,
निर्मित जीवन शैली धर्म हो गयी,
धीरे-धीरे ये ध्वज, ये रंग, ये धर्म,
परम पिता से ऊपर खड़े हो गए,
धर्म के दम्भ श्रद्धा से भी बड़े हो गए।।

उड़ना चाहते हैं

बादलों में तैरना चाहते हैं,
आसमान छूना चाहते हैं,
उठाते हैं हाथ, देख परिंदों को
पंख फैला कर उड़ना चाहते हैं
बच्चे बादलों में तैरना चाहते हैं,

बच्चे कब समझते हैं, कि उनकी
हद क्या है, आदमी होने की सरहद क्या है,
चाँद में सूत कातती नानी से मिलना
चाहते हैं, तोड़ कर सितारे लाना चाहते हैं,
बच्चे बादलों में तैरना चाहते हैं,

देखना चाहते हैं, पहाड़ी के पीछे
सूरज का घर निचोड़ना चाहते हैं
टुकड़ा बादल का पानी से तर
भर कर बस्ते में ये सारी निशानियाँ
दोस्तों को जलाना चाहते हैं,

बादलों में तैरना चाहते हैं,
आसमान छूना चाहते हैं,
उठाते हैं हाथ देख परिंदों को,
पंख फैला कर उड़ना चाहते हैं।।

अपनी यादें

इसका इतराना इसके नखरे,
इसकी मनमर्जियाँ कभी हो
जाना इतने पास कि लोग
टक-टकी लगा कर देखते रह जाऐं।

कभी नूर ऐसा कि, रात के अंधेरे में भी
सुई ढूंढ लें, कभी खिलंदड़ हो जाना इसका।

लुका छिपी करना, बादलों के पीछे,
कभी सताना यूँ, कि कई दिनों तक नज़र हीं न आना।

छोड़ जाना स्याह अंधेरा
और बस अपनी यादें।

सुनो!
मैं दो परिंदों को भेज रहा हूँ,
इस चाँद को लेकर, इसे बताना, समझाना
कि तुम्हें आता है ये सब उससे कहीं ज्यादा।

बेहतर और कहना,
तुम्हारे तो बस चर्चे ज़्यादा हैं।

आधी ज़िन्दगी

पहना क़र मुखौटा मुस्कुराहट का,
बदन में भर देती है,
उधार की ताजग़ी सौंप देती है।

नये दिन की कमान कभी
ख़्वाब के सिम्त, कभी ख़्वाब के उलट,
सुबह जानती है, ज़रूरत वक़्त की।

थोड़ी-थोड़ी बीती हुई,
थोड़ी-थोड़ी बची हुई,
वक्त की हद में कुछ ख़त्म
करने की ज़ल्दी दोपहर होती है।

ठीक आधी ज़िन्दगी,
आधी उम्र की तरह।।

वो मिलाती है मेहनत
को प्यार और परवाह से,
ले आती है, पैरों और पंखों
को अपने मुकाम पर बता देती है।

कल के ख़्वाब से बेहतर है वह
सुकून जो वो लेकर आती है, वो यानि कि शाम।।

वो आती है, बड़ी हीं ख़ामोशी से आहिस्ता-आहिस्ता
लेकर अपनी पोटली में यादें, तन्हाईयाँ, वस्ल, ख़्वाब,
नींद और बेचैनियाँ सबको देती है, उनकी मर्ज़ी का
सामान, रात समझती है, ज़रूरत सबकी।

चराग़

वो जो दिल में है, मैं उतार दूँ,
तुझे कागजों पे सँवार दूँ,
है ये आरज़ू, मेरी ज़िंदगी,
तेरी चाहतों में गुज़ार दूँ।

कभी डूब के मैं लिखूं तुझे,
कभी हर्फ़-हर्फ़ सीखूं तुझे,
मेरी शिद्दतों में ये ज़ोर हो,
तू जहाँ रहे, मैं दिखूं तुझे।

ये जुदाईयों के जो राग है,
जो न दिख रहीं ये वो आग है,
मेरे दिल की स्याह सराय में,
तेरा इश्क़ हीं तो चराग़ है।

कोई दर्मियाँ है अगर मेरे
तो है तू हीं मेरे जाने जां,
मेरा अक्स-अक्स तेरी छाप है,
मेरी धड़कने हैं तेरे निशां।

मेरे लफ्ज़-लफ्ज़ हैं पुकारते,
तुझे हाशियों पे उतारते,
अब आ भी जा मेरे हमनवां,
मेरी जान तुझपे निसार दूँ।

है जहाँ तलक मेरी जिंदगी,
मेरी कोशिशें तुझे प्यार दूँ।।

मेरी परछाई

न है तुम्हारी कोई पहचान
न चेहरा, न आँखें, न होंठ,
न तुम्हारी अपनी मर्ज़ी कोई।
तुम रोज पैदा होती हो
बढ़ती हो और बढ़ती हो।

और
दफ़्न हो जाती हो हर शाम के
पहले मिट्टी, सड़कों, दीवारों पर
तुम रहती हो सदा साथ, कड़ी धूप में,
उजालों रोशनी में बन कर मेरे ज़िंदा होने सबूत।

मेरे बदन की हर हरक़त को तुम
दोहराती हो मेरे साथ-साथ,
लेकिन शायद तुम नहीं जानती इस कड़ी धूप और
दिन भर के टकरावों के बाद, कुछ लड़ाइयाँ शुरू होती हैं।

अंधेरों में अंधेरों के साथ महसूस होती है
उस वक़्त तुम्हारी कमी, तुम अंधेरों में
दिखाई नहीं देती, या होती हीं नहीं मौज़ूद?

ज़वाब दो मेरी परछाई।।

ये यादें

दरवाज़े बन्द हो या चढ़ी हो,
चिटकनी खिड़कियों की,
हवाऐं जब चलती हैं, तो इन्हें
रोक कौन पाता है, तुम्हारी
याद भी जब आती है।

तो बस आती रहती है
और तब और भी ज्यादा
जब बंद हों दिमाग के दरवाज़े,
आँखों के रोशनदान और
कानों की खिड़कियाँ।।

ये यादें
हवाओं से कुछ कदम आगे हैं।।

मैं सैनिक सरहद का

जब मैं लौटता हूँ, छुट्टियों के बाद,
ज़ानिबे सरहद, तुमने देखा होगा मेरा
सामान एक बड़ी सी पेटी, जिस पर
लिखा हुआ मेरा नम्बर मेरी पहचान सुनो
वहाँ हम नाम से नहीं नम्बर से जाने जाते हैं।

नाम तो हमें शहादत के बाद हीं मिलता है,
खैर ये जो सामान देखते हो न तुम सफर में अक्सर
सब कहते हैं, कितना वज़न ले के चलना होता है
सैनिकों को शायद वो जान पाते उससे कई गुना वज़न
हम ले के निकलते हैं घर से, विदा होते हुए।।

यादों का, ख़्वाबों का, ज़िम्मेदारियों का और
उस एक-एक दिन का जो गुजरने वाले हैं अगली छुट्टी तक।

माँ के आँसू उसका प्यार उसका डर, बहन की ठिठोली,
कुछ अरमान भाई के, भविष्य की चिंता, पत्नी की
मांग का सिंदूर, उसका शृंगार, उसका स्पर्श, उसकी
खुशबू और मेरी चंद दिनों की छुट्टियों में।

ज़िन्दगी समेट लेने की उसकी ज़द्दोज़हद,
उसके गर्भ में अंकुरित हुआ, मेरा प्रतिरूप,
हफ़्ते दर हफ़्ते बढ़ने वाले गर्भ का वह बोझ,
यह सब ले के निकलता हूँ।

मैं ज़ेहन में, जब विदा होता हूँ,
लंबी छुट्टियों के बाद ज़ानिबे सरहद,
मैं सैनिक सरहद का।।

मेरे एहसासों

न मैं शब्दों का हूँ बाज़ीगर,
न व्यापारी कोई।

मेरा कोई सर्कस भी नहीं है,
जहाँ मैं इनसे कहूँ, कि कुछ ऐसा करो,
कि लोग दाँतों तले दबा ले उंगलियाँ
अपनी, न कोई चौराहे पर मज़मा लगाए मदारी हूँ।

जो डमरू बजा कर कहे, चल ज़मूरे, भाई साहब
को बताओ प्रेमिका कैसे रूठती है, मैं बगैर किसी
मुनाफ़े की आस लिए, सुनसान जगहों पर जहाँ कोई
जाता नहीं अक्सर वहाँ मैं इन्हें पुकारता हूँ, पुचकारता हूँ।।

देता हूँ अपना वक्त और ये एहसासों के बन्दर
मुझे ला कर देते हैं, मन की गहराइयों के जंगलों से
नये-नये फल इस खेल-खेल में, भर जाता है मेरी कलम के
सुकून का पेट और बाँट भी देता हूँ, मेरे खास साथियों में।।

मेरे एहसासों के ये बन्दर बड़े चौकन्ने हैं,
शर्मीले और सहमे भी रहते हैं,
जब तक न रहूँ अकेले, नितांत अकेले..
तब तक पास नहीं आते।।

जिंदगी वतन के नाम

काश, काश की तुम देख पाते,
तुम देख पाते की तुम्हारी अंतिम
यात्रा के पीछे लोगों का कितना हुजूम उमड़ा है।

काश तुम देख पाते जो कल तक तुम्हारे नाम और
चेहरे से अनजान थे, आज वही बच्चे-बच्चे की जुबान पर
तुम्हारा नाम है, सिर्फ नाम नहीं, जयकारे हैं तुम्हारे नाम के।

काश तुम देख पाते, तुम्हारे परिवार से
बात करने उनका चेहरा देखने के लिए बेसब्र है,
सारी मीडिया, काश तुम महसूस कर पाते,
कि तुम्हारा चन्दन से पटा हुआ शरीर खुशबू दे रहा है,
मीलों तक किसी जन्नत के फ़रिश्ते सा नूर बरस रहा है।।

तिरंगे से लिपटे हुए तुम्हारे ताबूत से,
काश तुम देख पाते, कि तुम्हारे बहे खून की
एक-एक बूंद आक्रोश बन कर कई गुना रफ़्तार से,
बहने लगी है देश के जवानों के शरीर में, काश तुम
देख पाते, तुम्हारी श्रद्धांजलि सभाओं में ज़लती असंख्य
मोमबत्तियों को, जिन्हें कभी दुश्मन देश में डाल दिया जाए,
तो वो पल में भस्म हो जाए, काश कि तुम देख पाते तुम्हारे
जाने भर से होने वाली क्रांति को।।

काश वो कायर ज़ेहादी भी देख पाते यह मंज़र,
काश वो देख पाते कि गैर पर कब्ज़ा करने की नीयत से
मर कर मिली मौत जिसमें बदन को खाक तक
नसीब नहीं होती और अपने वतन के लिए,
मर मिटने वाली मौत में कितना अंतर होता है।।

बेटियाँ

हो जाती है बहुत जल्द बहुत बड़ी,
बड़ी जल्दी सीख लेती है लहज़े,
उठने बैठने बात करने के तौर तरीके
नज़रें ज़मीन में गड़ा कर चलने का हुनर।

हँसी की आवाज़ को दबाने
और मुस्कुराहट को घूंघट में दफ़न कर
देने का हुनर भी वो बड़ी जल्दी सीख जाती है।।

10 बाय 10 के घर में
आधा समय आँगन में खेलते हुए,
काम करते हुए, वो बड़ी हीं जल्दी समझने लगती है।

एक्सरे करती हुई निगाहों के सामने से कैसे
गुज़रा जाता है, डरते-डरते कैसे मारा जाता है,
डर को और यूँ हीं बड़ी जल्दी बड़ी हो जाती हैं।

बस्तियों, झुग्गियों की बेटियाँ और जब होती है,
वास्तव में बड़ी वो हो जाती है पत्थर सी भाव हींन निष्ठुर।।

नाप लूँ मैं आसमाँ

नाप लूँ मैं आसमाँ
की थाह कितनी
गोल, कितनी है धरा,
है बड़ा आकार कितना,
और समंदर सात कदमों से गुजारूँ।

मैं हिमालय को दिखा दूँ , यह जगह उसकी
है क्रम में मुझसे नीचे और हवाओं को ख़िलाफ़त में हरा दूँ।

नाग जितने हैं, न वो निकलेंगे दर से,
दुश्मनों की हो जुबां भी बंद डर से,
ये ज़मीं, आकाश, धरती ये नदी, पर्वत,
ये जंगल और समंदर भी अमानत होंगें मेरी।

तुम जो थामो हाथ मेरा, तुम जो
थामो हाथ मेरा, मन परिंदा क्या करेगा,
सोच लेगा हाँ यहीं कि आ गया मुट्ठी में उसकी ये ज़माना।

तुम जो थामो हाथ मेरा, मन यहीं तो गायेगा फिर,
तुम जो मिल गए हो तो ये लगता है कि जहाँ मिल गया।।

खुशियों के गूढ़ ज्ञानी

उन्हें आता है, बेसमय, बेवक्त,
फ़िज़ूल मुस्कुरा देना, हँस देना
दिखाकर दाँत, वो नहीं आँकते
खुशियों को उसकी कीमत से, उनके आकार से,
नहीं करते खुशी के वक्त को बर्बाद सोच कर यह
की उस प्रसन्नता की वैलिडिटी कितनी है।

उन्हें नहीं सिखाये जाते हँसने,
मुस्कुराने के शिष्टाचार लहज़े दस्तूर कि
कब कितना हँसना है, वो नहीं समझते कि
किसी खुशी, मुस्कुराहट, या हँसी के पीछे
का कारण कितना बड़ा है।।

अक्सर जब हम होते हैं,
दुखी, चिंतित झुग्गी बस्तियों,
फुटपाथों पर पलने वाले बच्चों को
देख कर तब कई बार वो भौतिक सुविधाओं,
अभावों की चिंता से दूर हमसे कईं ज्यादा खुश होते हैं।।

बच्चे होते हैं खुशियों के गूढ़ ज्ञानी,
वो बताते हैं कि खुशियों की वैलिडिटी
की चिंता भी तो है दु:ख का मूल कारण।।

गर्म लिहाफ़

ठंड के मारे
ऐंठता रोआँ –रोआँ,
रूखी-रूखी चमड़ी लिये ..
बदन ढूंढता है, रात भर गर्म लिहाफ़।।

दिल पसीजता है, सूरज
का लेकर किरणों की कलम
खिला देता है बदन का रोआँ-रोआँ,
भर देता है चमक रूखे रुख़सारों पर, कितनी
सुंदर लगती है, तब बदन पर धूप की तहरीर।।

रोआँ-रोआँ झुलसता हुआ
पसीने से तर बदन जलती हुई चमड़ी,
भट्टी सी तपन में कराहने को मजबूर आदमी,
रात कर देती है, सर पे अपना दामन सहलाती है,
फूंकती है, अपने होठों से ठंडी हवा थके बदन को सुला देती है।।

सुनाते हुए लोरी कितनी सुंदर लगती है,
बदन पर रात की तहरीर।।

खुशी का अनुमान

थाम कर हाथ में कागज़ की
रंग बिरंगी फिरकी हवा से
बातें करता, बच्चा चेहरे पर विजय,
जोश और प्रसन्नता के भाव बता रहे हैं,
कि जानना मुश्किल है, खुशी के आकार को।

खुशी के कारक के आकार से,
कारण लाख छोटा हो या हो
बहुत बड़ा, महत्वपूर्ण सदा है,
आकार खुशी का।

भला, कोई कब लगा सका है,
कृष्ण की बाँसुरी सुनती
राधिका और गोपियों
की खुशी का अनुमान।

स्पर्श से माथे पर

इनके स्पर्श से माथे पर
होती है महसूस अज़ीब सी,
सरसराहट प्रवाहित होने लगती है,
तरंगें अपनत्व की ममत्व की देवत्व की।।

छू लेती हैं जब, किसी
दर्द वाली जगह को, दर्द खुद
ब खुद होने लगता है, छू मंतर।।

न जाने
क्या असर डाला है,
ईश्वर ने,
तुम्हारी इन खुरदुरी
उंगलियों में, माँ।।

आता है कभी वक़्त

आता है कभी वक़्त
ऐसा भी इंसान के भाग्य में,
जब अर्जुन की तरह अपनों से
अपनों के लिये करना होता है युद्ध।।

ठंडे पड़ जाते हैं हाथ पैर,
मन त्याग देता है हथियार,
झाँकने लगता है बगलें,
इधर-उधर जीत में भी
दिखती जब केवल हार है।।

जब कोई कृष्ण न हो,
जो हमें दिखा सके कोई राह,
तब बनाकर सुरक्षा घेरा बगैर प्रहार किये,
करते हुए सिर्फ आत्मरक्षा, उचित है प्रतीक्षा करना।।

क्योंकि समय बदलता है, तो बदलते हैं सितारे,
बदलती है दशायें, बदलती है मनोस्थितियाँ।।
नये समय का सूरज, लाता है अपने साथ कुछ नई सौगातें,
आता है ऐसा वक़्त भी इंसान के भाग्य-सौभाग्य से।।

सुकून की दौलत

हो सके तो कभी चलना मेरे
साथ, मेरे घर और हाँ यदि चाहो
चलना तो आना वक़्त पर,
मुझे पसन्द नहीं है, देरकर देना,
घर पहुँचने में, न दोस्त, यार न दावतें लुभाती है
मुझे न रंगीनियाँ, बाज़ारों की,

मैं बस घर पहुँचना चाहता हूँ, जल्द से जल्द,
जैसे हाँफता हुआ तैराक चाहता है पहुँचना
किनारे पर, बहुत जल्द, जैसे रात की कड़ाके की
ठंड के बाद चिड़िया, खिल उठती है।।

साथ-साथ धूप के जैसे मुंडेर पर रखा दीया
फड़फड़ाता है किसी आड़ के लिये
और आते हीं चार दीवारी में जलने है लगता
होकर शांत, बेहरकत, बस कुछ ऐसे हीं
पसन्द है मुझे शाम को पहुँचना अपने घर।।

हो सके तो आज चलना मेरे साथ,
मेरे घर, मैं दिखाऊँगा तुम्हें
प्यार, मस्ती, परवाह और सुकून की दौलत।।

मुट्ठी भर सुकून

बचपन के वो दिन अक्सर गर्मी की छुट्टियाँ ले
जाती थी, दादा-दादी के, मौसी के गाँव अंधेरा होते हीं,
सज जाते थे, टीन की छत पर बिछौने
भाई बहनों की पलटन के साथ।
देखते थे, आसमान का सनीमा,
महसूस होती है, आज भी टिन की उन
ऊँची-नीची नालियों से, पीठ पर होती मीठी चुभन।।

तब दिन में नाप लेते थे, हमारे दौड़ते कदम गाँव,
खेत, पहाड़, नदी, नाले, बाग़, बाड़ी की सारी ज़मीन।।
पीठ के बल लेटे-लेटे रातों में हम
घूम लेते थे, तारों से घिरा सारा आसमान,
तब ज़मीन भी हमारी थी और सारा आसमान भी हमारा हीं था।।

पहचान थी, उन दिनों अपनी आसमान के
हर एक सितारे से, आज के इस मशक़्क़त भरे दौर में,
ज़मीन नापते है, सिर्फ़ अंधे पाँव, आँखे नापती रहती हैं,
कंप्यूटर, ईमेल, मोबाइल, फाइलें और इन्हीं उधेड़बुनों के बीच।।

जाने कब हो जाती है आँखे बंद,
मुद्दत हुई, सितारों को देखे, क्या आज भी वैसे हीं दिखते हैं,
या बदल ली है, उन्होंने अपनी जगह काश कि निकल कर
शहर की इस चकाचौन्ध से, वापस पहुँच जाऊँ टिन की छत पर।।

वक़्त की हदबन्दी से दूर, जी भर कर देखूँ
पूरा आसमान, देखूँ इन सितारों की रियासत और काश
हो ऐसा कि कोई तारा टूटे और माँग लूँ मैं मुट्ठी भर सुकून।।

न मैं चाँद हूँ, न तुम सितारा

सुना है ज़माने हो गए हैं,
या कहें यूँ की जबसे क़ायनात है,
तबसे यहीं रिश्ता है इनका जब
भी आ जाते हैं, ये इसी
तरह बहुत क़रीब यहाँ ज़मीन
पर लोग ईद मनाने लगते हैं।।

शायद इन दोनों के मिलने का
समय हीं बहुत पाक साफ़ है,
ये नज़दीकियाँ, दूरियाँ इन
दोनों का अपना मज़ा है, मुझे भी
मंजूर है, अगर कोई कह दे कि इस
मंज़र की तरह हम तुम मिलते रहेंगे यूँ हीं।।

क़ायनात के ख़ात्मे तक तो कितना
दिलकश होता ये इंतज़ार, ये तसव्वुर,
ये वस्ल मग़र उफ्फ न मैं चाँद हूँ, न तुम सितारा।।

चाँद के पास, ये जो सितारा है न,
ये सितारा हसीन लगता है।।

व्यक्तित्व दर्पण

नाम - हेमन्त बोर्डिया

जन्म - 28 जून 1976, इन्दौर (म.प्र.)

माता - श्रीमती द्वारकी बोर्डिया

पिता - श्री कुंजीलाल बोर्डिया

पत्नी - श्रीमती दीपाली बोर्डिया

पुत्र - सार्थक बोर्डिया

शिक्षा - स्नातक विज्ञान (गणित)

कार्य - प्रबंधक विपणन

विधा - तुकांत, अतुकांत, ग़ज़ल

प्रकाशन - 'गूँजन' सांझा संकलन, परिंदे ख़यालों के (काव्य संग्रह)

सम्मान - अंतरा शब्द शक्ति सम्मान 2017 एवं अंतरा शब्दशक्ति 2019।

यदि आप अंग्रेजी में हस्ताक्षर करते हैं तो निवेदन है कि 'हिन्दी में हस्ताक्षर करें', आपकी यह छोटी-सी कोशिश हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बनाने में अमूल्य योगदान देगी ।

अन्तरा शब्दशक्ति
www.antrashabdshakti.com

१५, नेहरु चौक, मेन रोड वारासिवनी,
जि. बालाघाट (म.प्र.) पिन ४८१३३१,
संपर्क- ९४२४७६५२५९,
अणुडाक: antrashabdshakti@gmail.com

978-93-5372-023-0

मूल्य- 60/-